## शूर्पणखा का रावण के निकट जाना, श्री सीताजी का अग्नि प्रवेश और माया सीता

*** धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा॥ बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥3॥

भावार्थ:-खर-दूषण का विध्वंस देखकर शूर्पणखा ने जाकर रावण को भड़काया। वह बड़ा क्रोध करके वचन बोली- तूने देश और खजाने की सुधि ही भुला दी॥3॥

*** करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥ राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥4॥ बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥ संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥5॥

भावार्थ:-शराब पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिर पर खड़ा है? नीति के बिना राज्य और धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, भगवान को समर्पण किए बिना उत्तम कर्म करने से और विवेक उत्पन्न किए बिना विद्या पढ़ने से परिणाम में श्रम ही हाथ लगता है। विषयों के संग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान, मदिरा पान से लज्जा,॥4-5॥

*** प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥6॥

भावार्थ:-नम्रता के बिना (नम्रता न होने से) प्रीति और मद (अहंकार) से गुणवान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है॥6॥

सोरठा :

*** रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि। अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥21 क॥

भावार्थ:-शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा करके नहीं समझना चाहिए। ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगी॥21 (क)॥

दोहा :

*** सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ। तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ॥21 ख॥

भावार्थ:-(रावण की) सभा के बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकार से सेरोकर कह रही है कि अरे दशग्रीव! तेरे जीते जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिए?॥21 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई॥ कह लंकेस कहसि निज बाता। केइँ तव नासा कान निपाता॥1॥

भावार्थ:-शूर्पणखा के वचन सुनते ही सभासद् अकुला उठे। उन्होंने शूर्पणखा की बाँह पकड़कर उसे

उठाया और समझाया। लंकापति रावण ने कहा- अपनी बात तो बता, किसने तेरे नाक-कान काट लिए?॥1॥

*** अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए॥ समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥2॥

भावार्थ:-(वह बोली-) अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र, जो पुरुषों में सिंह के समान हैं, वन में शिकार खेलने आए हैं। मुझे उनकी करनी ऐसी समझ पड़ी है कि वे पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर देंगे॥2॥

*** जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन॥ देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना॥3॥

भावार्थ:-जिनकी भुजाओं का बल पाकर हे दशमुख! मुनि लोग वन में निर्भय होकर विचरने लगे हैं। वे देखने में तो बालक हैं, पर हैं काल के समान। वे परम धीर, श्रेष्ठ धनुर्धर और अनेकों गुणों से युक्त हैं॥3॥

*** अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता॥ सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥4॥

भावार्थ:-दोनों भाइयों का बल और प्रताप अतुलनीय है। वे दुष्टों का वध करने में लगे हैं और देवता तथा मुनियों को सुख देने वाले हैं। वे शोभा के धाम हैं, 'राम' ऐसा उनका नाम है। उनके साथ एक तरुणी सुंदर स्त्री है॥4॥

*** रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी॥ तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा॥5॥

भावार्थ:-विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड़ रति (कामदेव की स्त्री) उस पर निछावर हैं। उन्हीं के छोटे भाई ने मेरे नाक-कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी हँसी करने लगे॥5॥

*** खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥ खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥6॥

भावार्थ:-मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आए। पर उन्होंने क्षण भर में सारी सेना को मार डाला। खर-दूषन और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अंग जल उठे॥6॥

दोहा :

*** सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति। गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति॥22॥

भावार्थ:-उसने शूर्पणखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया, किन्तु (मन में) वह अत्यन्त चिंतावश होकर अपने महल में गया, उसे रात भर नींद नहीं पड़ी॥22॥

चौपाई :

*** सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥ खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥1॥

भावार्थ:-(वह मन ही मन विचार करने लगा-) देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में कोई ऐसा नहीं, जो मेरे सेवक को भी पा सके। खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान थे। उन्हें भगवान के सिवा और कौन मार सकता है?॥1॥

*** सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥ तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥2॥

भावार्थ:-देवताओं को आनंद देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने ही यदि अवतार लिया है, तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण (के आघात) से प्राण छोड़कर भवसागर से तर जाऊँगा॥2॥

*** होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥ जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥3॥

भावार्थ:-इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं, अतएव मन, वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है। और यदि वे मनुष्य रूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर उनकी स्त्री को हर लूँगा॥3॥

*** चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ॥ इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥4॥

भावार्थ:-राक्षसों की भयानक सेना आ गई है। जानकीजी को लेकर तुम पर्वत की कंदरा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्री रामचंद्रजी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथ मेंधनुष-बाण लिए श्री सीताजी सहित चले॥6॥

दोहा :

*** लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद। जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद॥23॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी जब कंद-मूल-फल लेने के लिए वन में गए, तब (अकेले में) कृपा और सुख के समूह श्री रामचंद्रजी हँसकर जानकीजी से बोले-॥23॥

चौपाई :

*** सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥ तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥1॥

भावार्थ:-हे प्रिये! हे सुंदर पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली सुशीले! सुनो! मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा, इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक तुम अग्नि में निवास करो॥1॥

*** जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥ निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥2॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही श्री सीताजी प्रभु के चरणों को हृदय में धरकर अग्नि में समा गईं। सीताजी ने अपनी ही छाया मूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके जैसे ही शील-स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी॥2॥

*** लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥ दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥3॥

भावार्थ:-भगवान ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी नहीं जाना। स्वार्थ परायण और नीच रावण वहाँ गया, जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया॥3॥

*** नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई॥ भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥4॥

भावार्थ:- नीच का झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुःखदायी होता है। जैसे अंकुश, धनुष, साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी! दुष्ट की मीठी वाणी भी (उसी प्रकार) भय देने वाली होती है, जैसे बिना ऋतु के फूल!॥4॥

## मारीच प्रसंग और स्वर्णमृग रूप में मारीच का मारा जाना, सीताजी द्वारा लक्ष्मण को भेजना

दोहा :

*** करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात। कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात॥24॥

भावार्थ:- तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी- हे तात! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले आए हैं?॥24॥

चौपाई :

*** दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें॥ होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥1॥

भावार्थ:- भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही (और फिर कहा-) तुम छल करने वाले कपटमृग बनो, जिस उपाय से मैं उस राजवधू को हर लाऊँ॥1॥

*** तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥ तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥2॥

भावार्थ:- तब उसने (मारीच ने) कहा- हे दशशीश! सुनिए। वे मनुष्य रूप में चराचर के ईश्वर हैं। हे तात! उनसे वैर न कीजिए। उन्हीं के मारने से मरना और उनके जिलाने से जीना होता है (सबका जीवन-मरण उन्हीं के अधीन है)॥2॥

*** मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥ सत जोजन आयउँ छन

माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं॥3॥
भावार्थ:- यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गए थे। उस समय श्री रघुनाथजी ने बिना फल का बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षणभर में सौ योजन पर आ गिरा। उनसे वैर करने में भलाई नहीं है॥3॥
*** भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥ जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥4॥
भावार्थ:- मेरी दशा तो भृंगी के कीड़े की सी हो गई है। अब मैं जहाँ-तहाँ श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को ही देखता हूँ। और हे तात! यदि वे मनुष्य हैं, तो भी बड़े शूरवीर हैं। उनसे विरोध करने में पूरा न पड़ेगा (सफलता नहीं मिलेगी)॥4॥
दोहा :
*** जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड। खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥25॥
भावार्थ:- जिसने ताड़का और सुबाहु को मारकर शिवजी का धनुष तोड़ दिया और खर, दूषण और त्रिशिरा का वध कर डाला, ऐसा प्रचंड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है?॥25॥
चौपाई :
*** जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥ गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा॥1॥
भावार्थ:- अतः अपने कुल की कुशल विचारकर आप घर लौट जाइए। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत सी गालियाँ दीं (दुर्वचन कहे)। (कहा-) अरे मूर्ख! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है? बता तो संसार में मेरे समान योद्धा कौन है?॥1॥
*** तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥ सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी॥2॥
भावार्थ:- तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जानने वाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया- इन नौ व्यक्तियों से विरोध (वैर) करने में कल्याण (कुशल) नहीं होता॥2॥
*** उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना॥ उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरौं रघुपति सर लागें॥3॥
भावार्थ:- जब मारीच ने दोनों प्रकार से अपना मरण देखा, तब उसने श्री रघुनाथजी की शरण तकी (अर्थात उनकी शरण जाने में ही कल्याण समझा)। (सोचा कि) उत्तर देते ही (नाहीं करते ही) यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्री रघुनाथजी के बाण लगने से ही क्यों न मरूँ॥3॥
*** अस जियँ जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा॥ मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥4॥

भावार्थ:- हृदय में ऐसा समझकर वह रावण के साथ चला। श्री रामजी के चरणों में उसका अखंड प्रेम है। उसके मन में इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं अपने परम स्नेही श्री रामजी को देखूँगा, किन्तु उसने यह हर्ष रावण को नहीं जनाया॥4॥ छन्द :

*** निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं। श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥ निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी। निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

भावार्थ:-(वह मन ही मन सोचने लगा-) अपने परम प्रियतम को देखकर नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजी सहित और छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत कृपानिधान श्री रामजी के चरणों में मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देने वाला है और जिनकी भक्ति उन अवश (किसी के वश में न होने वाले, स्वतंत्र भगवान) को भी वश में करने वाली है, अब वे ही आनंद के समुद्र श्री हरि अपने हाथों से बाण सन्धानकर मेरा वध करेंगे।

दोहा :

*** मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान। फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन॥26॥

भावार्थ:- धनुष-बाण धारण किए मेरे पीछे-पीछे पृथ्वी पर (पकड़ने के लिए) दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर-फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है॥26॥

चौपाई :

*** तेहि बननिकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ॥ अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई॥1॥

भावार्थ:- जब रावण उस वन के (जिस वन में श्री रघुनाथजी रहते थे) निकट पहुँचा, तब मारीच कपटमृग बन गया! वह अत्यन्त ही विचित्र था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोने का शरीर मणियों से जड़कर बनाया था॥1॥

*** सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा॥ सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥2॥

भावार्थ:- सीताजी ने उस परम सुंदर हिरन को देखा, जिसके अंग-अंग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। (वे कहने लगीं-) हे देव! हे कृपालु रघुवीर! सुनिए। इस मृग की छाल बहुत ही सुंदर है॥2॥

*** सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥ तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥3॥

भावार्थ:- जानकीजी ने कहा- हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिए। तब श्री रघुनाथजी (मारीच के कपटमृग बनने का) सब कारण जानते हुए भी, देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे॥3॥

*** मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा॥ प्रभु लछिमनहि कहा

समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥4॥
भावार्थ:- हिरन को देखकर श्री रामजी ने कमर में फेंटा बाँधा और हाथ में धनुष लेकर उस पर सुंदर (दिव्य) बाण चढ़ाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा- हे भाई! वन में बहुत से राक्षस फिरते हैं॥4॥
*** सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥ प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥5॥
भावार्थ:- तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीताजी की रखवाली करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्री रामचन्द्रजी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े॥5॥
*** निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥ कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई॥6॥
भावार्थ:- वेद जिनके विषय में 'नेति-नेति' कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते (अर्थात जो मन और वाणी से नितान्त परे हैं), वे ही श्री रामजी माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है॥6॥
*** प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥ तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥7॥
भावार्थ:- इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुत तेरे छल करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब श्री रामचन्द्रजी ने तक कर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, (जिसके लगते ही) वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा॥7॥
*** लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा॥ प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥8॥
भावार्थ:- पहले लक्ष्मणजी का नाम लेकर उसने पीछे मन में श्री रामजी का स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित श्री रामजी का स्मरण किया॥8॥
*** अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥9॥
भावार्थ:- सुजान (सर्वज्ञ) श्री रामजी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति (अपना परमपद) दी जो मुनियों को भी दुर्लभ है॥9॥
दोहा :
*** बिपुल सुमर सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ। निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥27॥
भावार्थ:- देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणों की गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा रहे हैं (कि) श्री रघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को भी अपना परम पद दे दिया॥27॥

चौपाई :

*** खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा॥ आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥1॥

भावार्थ:- दुष्ट मारीच को मारकर श्री रघुवीर तुरंत लौट पड़े। हाथ में धनुष और कमरमें तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीताजी ने दुःखभरी वाणी (मरते समय मारीच की 'हा लक्ष्मण' की आवाज) सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजी से कहनेलगीं॥1॥

*** जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥ भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥2॥

भावार्थ:- तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकट में हैं। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा- हे माता! सुनो, जिनके भ्रृकुटि विलास (भौं के इशारे) मात्र से सारी सृष्टि का लय (प्रलय) हो जाता है, वे श्री रामजी क्या कभी स्वप्न में भी संकट में पड़ सकते हैं?॥2॥

*** मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥ बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू॥3॥

भावार्थ:- इस पर जब सीताजी कुछ मर्म वचन (हृदय में चुभनेवाले वचन) कहने लगीं, तब भगवान की प्रेरणा से लक्ष्मणजी का मन भी चंचल हो उठा। वे श्री सीताजी को वन और दिशाओं के देवताओं को सौंपकर वहाँ चले, जहाँ रावण रूपी चन्द्रमा के लिए राहु रूप श्री रामजी थे॥3॥